21वीं सदी के साहित्य एवं मीडिया में मूल्य परिवर्तन

डॉ. अरुण घोगरे
सहयोगी प्राध्यापक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष,
बी.एस. पाटील महा., परतवाड़ा

भाषा जनसंचार का सबसे सशक्त माध्यम है, भाषा के बगैर इसकी कल्पना और विकास असंभव है। 20वीं सदी का पूर्वार्ध जनसंचार की भाषा का प्रारंभिक काल भले ही रहा हो परंतु उसके मानदंड निर्धारित थे। उसका प्रथम मानदंड ही यही था कि जनसंचार की भाषा जन भाषा, व्यावहारिक भाषा या परिष्कृत भाषा होनी चाहिए। आरंभ में जनसंचार के माध्यम पत्र–पत्रिकाएँ, पुस्तकें, रेडियो आदि थे। इन जनसंचार के माध्यमों की भाषा सधी एवं मर्यादित थी। किसी बात या विषय का उल्लेख करते समय भाषा की गरिमा एवं गांभीर्य का ध्यान रखना इस क्षेत्र के लोग अपना परम कर्तव्य समझते थे। हिन्दी साहित्य का तो वैशिष्ट्य रहा है कि उसने भाषा की गरिमा को निरंतर बनाये रखने का प्रयास किया है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के किसी भी साहित्यिक ने सामाजिक भाषा–धर्मिता का उल्लंघन कभी भी किसी भी कीमत पर नहीं किया। पत्रकारिता और सम्पादिकीय दायित्व के निर्वहन के संदर्भ में राजा राममोहन राय का मत है कि– "मेरा सिर्फ यह उद्देश्य है कि मैं जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध प्रस्तुत करूँ जो उनके अनुभव को बढ़ाएँ और सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध हों।"[1]

आदर्श और यथार्थ उन लेखकों के ऐसे क्लेम्प थे, जिसके बाहर जाकर अभिव्यक्ति की कल्पना करना भी दिवा स्वप्न था। पत्र–पत्रिकाओं के संदर्भ में यही बात है। सरस्वती, हंस, ब्लिट्ज, धर्मयुग, सरिता, इंडिया टुडे, नवभारत हो या नई दुनिया इन्होंने भी भाषा की मर्यादा को बनाए रखा। यही बात हम रेडियो के संदर्भ में भी कह सकते हैं। यही कारण है कि जनसंचार माध्यमों की भाषा हमें अपनी, अपने परिवार, समाज और देश की लगती थी। पूरा परिवार बेधड़क होकर एक साथ पढ़ने –सुनने का आनंद और आस्वाद ले सकता था। हमारे शिक्षक, बुजुर्ग और बुद्धिजीवी लोग नयी पीढ़ी के युवाओं को समाचार पत्र–पत्रिकाओं को पढ़ने और रेडियों के समाचार और कार्यक्रमों को सुनने के लिए प्रेरित करते थे क्योंकि विशुद्ध, परिष्कृत, सुसंस्कृत और ओज इन संचार माध्यमों की भाषा में था। जिससे भावी पीढ़ी ऐसी भाषा पढ़–सुन कर अपने भविष्य का मार्ग सुकर बना सके। वह वैयक्तिक, चारित्रिक एवं नैतिक रूप से सबल बन सके। अरुण प्रकाश मिश्र का कथन उपर्युक्त संदर्भ में संगत प्रतीत होता है– "समाचार–पत्र भाषा परिष्कृत करने का साधन माने जाते थे। परिवारों में समाचार–पत्र इस दृष्टि से ही मँगाए जाते थे कि बच्चों की भाषा सुधर सके। इससे यह निष्कर्ष स्वतः ही सामने आता है कि पत्रकारिता

की भाषा को समाज में आदर्श और मानक ही नहीं, अपितु परिष्कृत और स्तरीय भी माना जाता था।"[2]

20वीं सदी के उत्तरार्ध में दूरदर्शन और इंटरनेट ने जनसंचार की भाषा को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया। दूरदर्शन ने साहित्य को समस्त समाज के सम्मुख ऐसे प्रस्तुत किया कि सभी इसकी ओर आश्चर्यजनक ढंग से आकृष्ट हुए। यहाँ भी भाषायी मर्यादायें विखंडित नहीं हुईं। इसीलिए तो दूरदर्शन हर भारतीय के जीवन का अभिन्न अंग बन गया। कोई उसे मित्र तो कोई शिक्षक मानने लगा। दूरदर्शन ज्ञानर्जन का सबसे सरल और सहज साधन बन गया। इस संदर्भ में अर्जुन चव्हाण का भी यही मत है– "हिन्दी को जन–जीवन के बीच पहुँचाने में अन्य संचार साधनों की तुलना में दूरदर्शन इन दिनों सबसे प्रभावी साधन सिद्ध हुआ है, ध्वनि और दृश्य का जादूई नज़राना लेकर आने वाला यह संचार साधन जन–जन की आवश्यकता बना है और आकर्षण भी।"[3]

दूरदर्शन की तरह ही यह युग कम्प्यूटर की क्राँति का युग था। इस दौर में इंटरनेट के माध्यम से सूचना एवं औद्योगिकी की भाषा अँग्रेजी ही बनी रही। इसलिए ज्ञानार्जन हेतु समाज का पढ़ा–लिखा तबका ही इससे जुड़ा रहा और चोरी–चुपके अपनी स्वार्थ सिद्धि में लगा रहा। अनूप सेठी का मत भी इस ओर इंगित करता है– "जब भारत में कम्प्यूटर आया तो वह अँग्रेजी ही समझता था। उसका की बोर्ड अँग्रेजी के लिए ही बना था। हमारा देश तो अँग्रेजों का गुलाम तो रहा ही है। इसलिए अँग्रेजी का वर्चस्व आज तक बना हुआ है। नतीजतन अँग्रेजी समझने वाला कम्प्यूटर हमारे लिए सहज स्वीकार्य मामले की तरह था।"[4]

21 वीं सदी आते–आते जनसंचार की भाषा का स्वरुप एकदम बदल गया। अब दूरदर्शन और कम्प्यूटर के साथ–साथ मोबाइल भी इसमें जुड़ गया। दूरदर्शन के माध्यम से सैकड़ों चैनल आ गए। कम्प्यूटर (इंटरनेट) की भाषा अँग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ हो गई तथा मोबाइल तो नयी पीढ़ी का सर्वप्रिय मित्र बन गया। जिसने इंटरनेट के माध्यम से पूरी दुनिया को अपनी मुट्ठी में कर लिया। इस सदी में हुआ यह क्रांतिकारी परिवर्तन उन युवाओं के लिए वरदान साबित हुआ जो अपने भविष्य के प्रति गंभीर थे किंतु हमारे देश में ऐसे कितने लोग हैं, सो जनसंचार के माध्यमों ने इसका भरपूर लाभ उठाया। बाजारीकरण के दौर में वह अपनी भूमिका और कर्तव्य भूल गया। भाषा का स्तर गिर गया, विकृतियाँ बढ़ गयीं, सामाजिक मर्यादाओं, नैतिकता, चारित्रिकता और वैयक्तिकता का पतन आधुनिकता और विकास की आड़ में तेजी से होने लगा। इस संदर्भ में ललित तिवारी का मत उल्लेखनीय है– "साहित्य एक ऐसी चीज है, एक ऐसा बाप है, पुरातन बाप, मीडिया जिसका बिगड़ा हुआ बच्चा है। अब साहित्य को समझ में नहीं आ रहा है कि मैं इसे ठीक कैसे करूँ।... उसे हर आदमी फैशीनेट करने में लगा हुआ है। इस चक्कर में मीडिया अपने बड़े बाप को कुचलता जा रहा है।"[5]

विदेशों में तो दूरदर्शन को इडियट बॉक्स की संज्ञा दे दी गई है और भारतीय मीडिया पर तो आरोप लगा दिया गया है कि यह ट्रिपल. सी याने क्रिकेट, सिनेमा और क्राइम से ग्रसित है। निश्चित ही यह निदंनीय है। जनसंचार माध्यमों को पुनः साहित्य से संबंध जोड़ना होगा, अपनी असाहित्यिक छबि को

धोना होगा क्योंकि मीडिया और साहित्य का जो अतर्संबंध है, वह इतना अनूठा है कि उसको कोई मिटा नहीं सकता।

अर्जुन चव्हाण का मत इस संदर्भ में उल्लेखनीय है– "कौन नहीं जानता कि राजभाषा के रूप में हिन्दी जितनी उपेक्षित रही है, जनभाषा के रूप में आज उसका कोई सानी नहीं, मीडिया का उपयोग उसे राजभाषा के रूप में स्थापित करने में होगा तो उस राष्ट्र का कल्याण भी होगा, जिसके हम नागरिक हैं, क्योंकि मीडिया ऐसा साधन है, जिसमें अधिकार से वंचित हिन्दी को वांच्छित रूप में स्थापित करने की शक्ति है, अब देखना यह है कि जिन हाथों में मीडिया की ताकद है, वे हिन्दी को अपना अधिकार दिलाने में कितनी कारगर भूमिका निभाते हैं?"[6]

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के साहित्य एवं मीडिया में मूल्य परिवर्तन हुए हैं। इस पर मीडिया को पुनर्विचार कर साहित्य से अपना नाता जोड़कर आदर्श और यथार्थ को अपना आधार बनाना होगा तब कहीं हम अपनी वर्तमान पीढ़ी के भविष्य को सुनहरा बना सकेंगे।

संदर्भ

1. द न्यूज पेपर इन इंडिया – हेमेन्द्र प्रसाद घोष – पृ. 25–26.
2. पत्रकारिता और साहित्यिक भाषा – अरुण प्रकाश मिश्र (अनभै : अप्रैल – सितंबर, 2006) पृ. 39.
3. संचार माध्यम का हिन्दी परिप्रेक्ष्य – अर्जुन चव्हाण – (संचारिका : जनवरी – मार्च, 2005) पृ. 6.
4. इंटरनेट और हिन्दी : चुनौतियाँ और संभावनाएँ – अनूप सेठी (अनभै : अप्रैल – सितंबर, 2006) पृ. 49.
5. साहित्य और मीडिया के बीच कौन? – ललित तिवारी (अनभै : अप्रैल –सितंबर, 2006) पृ. 33.
6. संचार माध्यम का हिन्दी परिप्रेक्ष्य – अर्जुन चव्हाण (संचारिका : जनवरी–मार्च, 2005) पृ. 12.